मध्यप्रदेश : भ्रष्ट शिक्षा व्यवस्था से त्रस्त बच्चे

▪ सचिन कुमार जैन

सिवनी जिले की पथरई पंचायत के अल्केसुर गांव की आरोबाई यूं तो खुद निरक्षर हैं किन्तु उन्होंने अपने बच्चों की जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिये बड़े जतन से उन्हें स्कूल भेजना शुरू किया पर अब उन्हें शंका है कि क्या वास्तव में शिक्षा के कारण उनके बच्चे के जीवन में बदलाव आयेगा। उनके भीतर शिक्षा व्यवस्था के प्रति गहरा क्रोध फनफना रहा हैं इसलिये नहीं कि वे खुद अनपढ़ रह गई बल्कि इसलिये कि आज की शिक्षा व्यवस्था ही भविष्य के शोषक और भ्रष्टाचारी नागरिकों का निर्माण कर रही है। अल्केसुर गांव के शासकीय स्कूल में प्राथमिक स्तर के 80 बच्चे परीक्षा देकर ही दबाव से मुक्त नहीं हो जाते हैं। उन्हें हर परीक्षा के बाद (यानी तिमाही और छहमाही भी) परीक्षा के परिणाम जानने के लिये स्कूल शिक्षक को 5 रूपये से 25 रूपये तक की रिश्वत चुकानी पड़ती है इसके बाद ही उन्हें परिणाम बताया जाता है। इस साल तो रिश्वत न मिलने के कारण एक महीने तक परीक्षा परिणाम ही घोषित नहीं किये गये। इस गांव के लोग गुस्से में तो हैं पर सरकारी व्यवस्था का चरित्र उन्हें इस भ्रष्टाचार को स्वीकार करने के लिये मजबूर कर देता है। अल्केसुर के 80 बच्चे अनजाने में ही यह सवाल पूछ लेते हैं क्या यह हमारे साथ किया गया अपराध नहीं है? यदि है तो फिर अपराधी कौन है और उसे सजा कौन देगा?

शिक्षा अब एक संवैधानिक बुनियादी अधिकार बन चुका है और शिक्षा चूंकि बच्चे के जीवन के निर्माण का आधार होती है इसलिये उसका कोई विकल्प भी नहीं हो सकता है। किन्तु शिक्षा की महत्ता ने ही शिक्षा को अब बाजार की वस्तु बना दिया है। यह वस्तु अब बड़े आलीशान मॉलनुमा स्कूलों में भी बिक रही है और फुटपाथ पर भी। आमतौर पर विश्लेषणों में यह निष्कर्ष निकाले जाते रहे हैं कि शोषण और असमानता के खिलाफ क्रांति का माहौल बनाने के शिक्षा की सबसे अहम् भूमिका होगी क्योंकि शिक्षा बच्चे के सुसुप्त विचारों को जागृत कर उन्हें बेहतर समाज बनाने के लिये प्रेरित करेगी। परन्तु अल्केसुर गांव के अस्सी बच्चे जब जागृत मन और मस्तिष्क से अपने परीक्षा परिणाम जानने के लिये किसी और को नहीं बल्कि अपने ही गुरूजी को रिश्वत देने के लिए मजबूर हैं तो यह तय है कि उनके मन पर पड़ी भ्रष्टाचार की यह छाप भविष्य के उनके अपने व्यवहार को भी वैसा ही रूप भी प्रदान करेगी।

सामान्यतः जब भी शिक्षा व्यवस्था में भ्रष्टाचार पर बात होती है तब यही तथ्य उभरकर सामने आते हैं कि शिक्षकों की नियुक्ति, तबादले, निर्माण और सामान की आपूर्ति के ठेकों में ही भ्रष्टाचार या रिश्वत का लेनदेन होता है किन्तु भारत में भ्रष्टाचार की स्थिति पर हुये अध्ययन ने यह निष्कर्ष निकाला है कि बारहवीं कक्षा तक के स्कूलों में छोटे-छोटे काम करवाने के लिये बच्चों के पालकों ने एक वर्ष में 4137 करोड़ रूपये की रिश्वत दी। भारत में 8.2 करोड़ परिवारों के बच्चे स्कूलों में पढ़ते हैं जिनमें से 204 करोड़ परिवार शहरी और 5.8 करोड़ परिवार ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। इसमें से 0.40 करोड़ शहरी परिवारों और 1.1 करोड़ ग्रामीण परिवारों ने शिक्षा संस्थानों और विभाग में अपने काम पूरे करवाने के लिये रिश्वत दी। और जो परिवार ''रिश्वत के विकल्प'' उपयोग करने के लिये बाध्य हैं वे एक वर्ष में औसतन 2744 रूपये का भुगतान करते हैं। जिस देश में प्रति व्यक्ति आय 12416 रूपये हो वहां यह राशि जीवनस्तर को स्पष्ट रूप से प्रभावित करती है।

मध्यप्रदेश में अब यूं भी यह मान लिया गया है कि सरकारी शिक्षा व्यवस्था अब अपने जीवन के अंतिम चरण में है इसलिये उसकी गुणवत्ता और चरित्र को सुधारने में सरकार की कोई क्रांतिकारी या राजनैतिक रूचि नहीं है। सरकारी की नीतियां बनाने एवं उसे प्रभावित करने वाले (अफसर और जनप्रतिनिधि) जानते हैं कि शिक्षा का व्यापार आज के दौर में एक शुद्ध लाभ का सौदा है। सरकार केवल लोगों को शिक्षा के प्रति जागरूक करने का काम करे और लोग जागरूक होकर निजी स्कूलों में जाकर बच्चों के जीवन के निर्माण की सेवा का ऊंचे शुल्क पर उपयोग करें। सरकारी स्कूलों का चरित्र और रूप इस तरह का कर दिया गया है कि अब निम्न और मध्यम आय वर्ग के लोगों की प्राथमिकता में भी सरकारी स्कूलों का कहीं कोई स्थान नहीं है। हालात आज भी यह है कि मध्यप्रदेश के 26.83 प्रतिशत विद्यालय (लगभग 25 हजार) कक्ष विहीन हैं। इन स्कूलों में कक्षायें खुले मैदान, पेड़ के नीचे, जानवरों के बाड़े में लगती हैं या फिर लगती ही नहीं हैं।

और 2700 इमारतें ऐसी स्थिति में हैं कि किसी भी समय भरभराकर ध्वस्त हो सकती हैं। यूं तो योजनाओं में मास्टर साहब की उपस्थिति को नियमित करने के लिये बहुत से प्रावधान किये गये हैं किन्तु आदिवासी और ग्रामीण इलाकों के प्राथमिक स्कूलों में शिक्षक आठ से ग्यारह दिन ही उपस्थित रहता है ऐसे में बच्चे कितने शिक्षित हो पायेंगे, यह सवाल परिवारों के सामने साल-दर-साल विकराल होता जाता है। इस पर भी शिक्षा की गुणवत्ता तो अपनेआप में सवालों के दायरे में ही है। ऐसा कतई नहीं है कि समाज या कोई बाहरी तत्व पाठ्यक्रम और शिक्षण व्यवस्था को भ्रष्ट या गुणवत्ता हीन बनाते हैं। सरकार खुद ही भेदभाव और असमानता

को पालती-पोसती है। राज्य सरकार अपने स्कूलों के लिये अलग पाठ्यक्रम संचालित करती है जिन पर न तो सकारात्मक शोध होते हैं न ही उन्हें बेहतर करने की कोशिशें। वहीं दूसरी ओर केन्द्रीय स्तर पर केन्द्रीय बोर्ड बिल्कुल आधुनिक शिक्षा के सपने को लेकर चलता नजर आता है और उससे मान्यता प्राप्त विद्यालय में राज्य सरकार से बिल्कुल अलग पाठ्यक्रम संचालित होता है। तमाम विरोधाभासों से भरी स्थिति में अब बच्चे और उनके पालक शिक्षा के बाजार की तरफ रूख करने के लिये बाध्य हैं। सरकारी शिक्षा व्यवस्था मध्यप्रदेश सरकार ने तो पूरी तरह से ठेके के शिक्षकों (जिन्हें शिक्षाकर्मी, संविदा शिक्षक या गुरूजी कहा जाता है) को सौंप दी है। ये शिक्षक हैं पर इन्हें न तो शिक्षकों का दर्जा है, न इन्हें प्रशिक्षण दिया जाता है और न ही सम्मान। ये पूरी तरह से अल्पवेतन पर काम करने वाले "अस्थाई कर्मी" होते हैं। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं लगता है कि तीन हजार रुपये मासिक वेतन पर यह अस्थाई नौकरी पाने और नौकरी पाने के बाद मनपसंद स्कूल में नियुक्ति के लिए पचास हजार से एक लाख रुपये की रिश्वत चुकाई है। इसे चुकाना इसलिए कहना वाजिब है क्योंकि अब रिश्वत शिक्षा व्यवस्था का एक अहम् अंग बन चुकी है और व्यवस्था के रग-रग में प्रवाहित होती है। भारत भर में इस तरह के 379385 पैरा-शिक्षकों में से अकेले मध्यप्रदेश में 117502 पैरा-शिक्षक नियुक्त किये गये हैं और एक आकलन के मुताबिक 41 फीसदी शिक्षकों ने नियुक्ति के लिये औसतन पचास हजार रुपये का शुल्क चुकाया है। दूसरे मायनों में लगभग 240 करोड़ रुपये का अप्रत्यक्ष बोझ बच्चों और उनके परिवारों पर आया। यह तय है कि नौकरी पाने के लिये किये गये व्यय को अब शिक्षक बच्चों से ही वसूल करेंगे या स्कूल में ताला लगाकर अन्य व्यवसाय में जुट कर आय अर्जन करेंगे।

बात केवल सरकारी शिक्षा व्यवस्था की ही नहीं है। भारतीय भ्रष्टाचार अध्ययन (2005) के परिणाम स्पष्ट करते हैं कि निजी स्कूल हर वर्ष इमारत के रख-रखाव, शैक्षिक कार्यक्रमों, उपकरणों की खरीदी और अन्य सुविधाओं के विस्तार के नाम पर ऊंची राशि वसूल करते हैं। निजी स्कूलों में शिक्षा का संवैधानिक अधिकार पाने के लिये परिवार 12 हजार रुपये से लेकर साढ़े तीन लाख रुपये तक का शिक्षा शुल्क चुकाते हैं और आश्चर्य की बात है कि इन्हें सरकार करों और अन्य सुविधाओं (जैसे जमीन) में भारी रियायतें देती है। प्रावधानों के अनुसार निजी स्कूलों में गरीब परिवारों के बच्चों को निःशुल्क प्रवेश मिलना चाहिये परन्तु इसका कहीं पालन होता नजर नहीं आता है। निजी स्कूलों के बच्चों के पालक भी जानते हैं कि उनसे अलग-अलग रूपों में रिश्वत ली जा रही है किन्तु अध्ययन के निष्कर्ष यह भी कहते हैं कि बच्चों के भविष्य के प्रति भयाक्रांत रहते हैं। क्योंकि सवाल पूछने पर बच्चों के साथ बुरा बर्ताव होता है और उनके परीक्षा परिणाम बिगाड़ दिये जाते हैं। इतना ही नहीं उन्हें यह कभी नहीं बताया जाता है कि रखरखाव और उपकरणों की खरीदी करने का शिक्षा का स्तर सुधारने के नाम पर लिये गये शुल्क का कब, कहां और किस तरह उपयोग किया गया?

साफतौर पर यह तो नजर आता ही है कि शिक्षा व्यवस्था, फिर वह सरकारी हो या निजी, में प्रबंधन और शिक्षकों की जवाबदेहिता तय नहीं होती है। वे कानूनी और नागरिक प्रतिबद्धताओं से खुद को स्वतंत्र मानते हैं। यही कारण है अब केवल शिक्षा व्यवस्था के प्रबंधन में ही भ्रष्टाचार नहीं है बल्कि वह शिक्षा के व्यवहार और चरित्र में भी गहरे तक प्रवेश कर चुका है। अल्केसुर गांव तो केवल एक उदाहरण मात्र है। मध्यप्रदेश के हजारों स्कूलों के लाखों बच्चे आज इस भ्रष्टाचार के सूर्यग्रहण को नंगी आंखों से देख रहे हैं। और स्वाभाविक है कि इस सूर्यग्रहण का प्रभाव उनकी आंखों पर इतना गहरा पड़ेगा कि समाज को देखने का उनका नजरिया ही पूरी तरह से बदल जायेगा। सरकार और नागरिक समूहों को बुनियादी रूप से यह स्वीकर कर लेना चाहिये कि संवैधानिक अधिकार होने के नाते बच्चों को ईमानदार शिक्षा और शैक्षिक वातावरण उपलब्ध कराना राज्य की जिम्मेदारी है। खराब वातावरण और भ्रष्ट व्यवहार स्वीकार करते रहना बच्चों की मजबूरी नहीं है। यदि बीमार होती इस व्यवस्था को बदला नहीं गया तो भविष्य के नागरिक समाज के प्रति नहीं बल्कि निजी स्वार्थों और भ्रष्टाचार के प्रति ही जवाबदेय होंगे। उन बच्चों का सवाल वाजिब है कि यह बच्चों के साथ होने वाली एक किस्म की हिंसा है और इससे मुक्ति के लिए राज्य-समाज को इच्छाशक्ति दिखाना होगी।